सच्चा ख़तरा

रजि० नं० बी, ४४४८

हरिजनसेवक

दो आना

भाग १०

सम्पादक : प्यारेलाल

अंक २३

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

अहमदाबाद, रविवार, ता० १४ जुलाई, १९४६

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६,
विदेशमें रु० ८; शि० १४; डॉलर ३

हिन्दी और उर्दूका अन्तर

भाई रामनरेश त्रिपाठीको मैं काफ़ी जानता हूँ। एक रोज़ वे मसूरीमें मिलने आये थे। मुझे डर था कि हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिए वे मुझे डाँटेंगे। लेकिन बातें करनेसे मैंने उलटा ही पाया। वे मुझसे कहने लगे कि अगर मैं हिन्दी और उर्दूके मेलसे सच्ची हिन्दुस्तानीकी उम्मीद रखता हूँ, तो मुझे उर्दूसे ज़्यादा मदद मिलेगी। शर्त यह है कि उर्दूको नया जामा पहनाकर बिगाड़नेकी जो कोशिश हो रही है, उसे मैं उसी तरह समझ लूँ, जिस तरह हिन्दीको बिगाड़नेकी कोशिशको समझता हूँ। उस हालतमें हिन्दुस्तानी अपने-आप फिर ज़िन्दा हो जायगी। इस पर मैंने उनसे कहा कि वे मुझको कुछ मिसालें दें, जिससे मैं समझ सकूँ कि उनके कहनेका मतलब क्या है। सोचने लगे, तो कुछ दिक़्क़त मालूम हुई। तब मैंने कहा कि मुझको कुछ लिखकर समझावें। उसका नतीजा यह है कि उन्होंने मुझे नीचेका ख़त भेजा है :

"पूज्य बापू,

"हिन्दी और उर्दूके ढाँचेका अन्तर आपने माँगा था। पर ढाँचा तो मुझे अनुभवगम्य-सा जान पड़ता है। उसकी कोई अलग रूपरेखा खींचकर नहीं दिखा सकता हूँ। हाँ, एक सुझाव दे सकता हूँ। 'हरिजन'के किसी एक पैरेग्राफका अनुवाद हिन्दी और उर्दूके किन्हीं दो योग्य लेखकोंसे कराकर देख लीजिये। ढाँचोंका अन्तर दिखाई पड़ने लगेगा।

"मैंने उस दिन कहा था कि उर्दू हिन्दीसे अधिक परिमार्जित है। इसका एक उदाहरण लिखता हूँ। हिन्दीके एक प्रसिद्ध लेखकका यह वाक्य है : 'समझमें न आनेसे घबराहट-सी लगने लगती है'। उर्दूमें घबराहट 'लगती' नहीं, 'होती है' या 'पैदा होती है'। उर्दूका कोई प्रसिद्ध लेखक कभी ग़लत मुहावरा नहीं लिखेगा। और अगर लिख देगा, तो उसको ज़बर-दस्त मोरचा लेना पड़ेगा। हिन्दीमें भाषाके संशोधनका आन्दोलन ही नहीं है। कोई आन्दोलन क़ायम करनेकी अपेक्षा उर्दू भाषाकी पुस्तकें या लेख हिन्दी अक्षरोंमें छपने लगें, तो हिन्दी भाषाका बड़ा उपकार होगा। उर्दू भाषाके सुधारने और सँवारनेमें उर्दूके शायरों और लेखकोंने पिछले कई सौ बरसोंमें जो हाथापाई की है, उसका लाभ हिन्दी भाषाको सहज ही मिल जायगा। और इस प्रयोगसे वह आप-से-आप हिन्दुस्तानी बन भी जायगी।"

यह ख़त विचार करनेके लायक़ है। मैं भाषाका प्रेमी हूँ, भाषाका शास्त्री नहीं हूँ। हिन्दीका मेरा ज्ञान ऐसा ही है। मैंने कोई पुस्तक पढ़कर हिन्दी सीखी नहीं। इसके लिए समय ही नहीं मिला। मेरा लड़का देवदास, जो मेरे प्रोत्साहनसे और आशीर्वादसे हिन्दी सीखनेके लिए मद्रास चला गया था, मुझसे बहुत ज़्यादा हिन्दी जानता है। ऐसे दूसरे भी हैं, जिनके नाम मैं दे सकता हूँ। उर्दूका ज्ञान मुझे हिन्दीसे भी बहुत कम है। नागरी लिपि बचपनसे जानता हूँ। फ़ारसी लिपि तो मेहनत करके सीखा हूँ। लेकिन उसका मुहावरा न होनेसे उसे थोड़ी मुश्किलसे पढ़ पाता हूँ। जैसे-तैसे लिख भी लेता हूँ। इस तरह उर्दूका ज्ञान तो बहुत ही कम है। जो है, सो प्रेम है, और किसीका पक्षपात नहीं है। इसलिए अगर भगवान्‌की कृपा हुई, और भाषा-शास्त्रियोंकी मदद मिली, तो मेरा यह साहस सफल होगा। इसी ख़यालसे त्रिपाठीजीका यह ख़त मैंने छापा है, जिससे वे इस काममें मदद दें और दूसरे भी हाथ बँटायें।

एक दूसरे हिन्दी भाषा-प्रेमीने भी मुझे यह बताया है कि उर्दूमें भाषा पर जो मेहनत हुई है, वह हिन्दीमें शायद ही हुई हो। अब अगर दोनों खींचातानीमें न पड़ें और समझ लें कि दोनों भाषाओंकी जड़ एक ही है, और जिसे करोड़ों देहाती बोलते हैं, उसीके लिए शास्त्रियों और शायरोंको मेहनत करनी है, तो हम जल्दीसे आगे कूच कर सकते हैं।

पूना, ३-७-'४६

मोहनदास करमचंद गांधी

हफ़्तेवार ख़त

नया अन्धा विश्वास ?

पिछले दिनों पूनामें प्रार्थनाके बादकी अपनी एक तक़रीरमें गांधीजीने पूछा था : "क्या मैं एक नई क़िस्मके अन्धे विश्वासका प्रचार कर रहा हूँ ? ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं। वह सब जगह मौजूद है और सर्वशक्तिमान (क़ादिरे मुतलक़) है। जो भी कोई उसे अपने दिलमें जगह देता है, वह ऐसी अजीब उम्मीदों और उमंगोंसे भर जाता है, जिनकी ताक़तका मुक़ाबला भाप और बिजलीकी ताक़तसे नहीं किया जा सकता। वह ताक़त तो उससे भी ज़्यादा सूक्ष्म होती है।" राम-नाम कोई जादू-टोना नहीं। वह तो अपने समूचे अर्थके साथ ही लिया जाना चाहिये। गांधीजीने कहा कि राम-नाम गणितका एक ऐसा सूत्र या फ़ॉर्मूला है, जो थोड़ेमें बेहिसाब खोज और तजरबे (प्रयोग)को ज़ाहिर कर देता है। सिर्फ़ मुँहसे राम-नाम रटनेसे कोई ताक़त नहीं मिलती। ताक़त पानेके लिए ज़रूरी यह है कि सोच-समझकर नाम जपा जाय और जपकी शर्तोंका पालन करते हुए ज़िन्दगी बिताई जाय। ईश्वरका नाम लेनेके लिए इनसानको ईश्वरमय या ख़ुदाकी ज़िन्दगी बितानी चाहिये।

ख़राब शगुन

दक्षिण अफ़्रीकाका सत्याग्रह एक ख़राब शगुन और एक चेतावनी है। जैसा कि अभी उस दिन ए० आई० सी० सी०की बैठकमें पण्डित जवाहरलालजीने कहा था, मुमकिन है, आज भी हिन्दुस्तानका भविष्य परदेशमें बसे हुए हिन्दुस्तानियोंकी, ख़ासकर दक्षिण अफ़्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी, लड़ाईके ज़रिये तय हो रहा हो। वहाँ 'लिंच लॉ'ने एक आदमीकी जान तो ले ही ली है। कहा जाता है कि वहाँके गोरे गुण्डोंने एक हिन्दुस्तानीको ग़लतीसे सत्याग्रही समझकर इतना पीटा कि वह मर गया। इस पर रायज़नी करते हुए गांधीजीने कहा : "यह एक अफ़सोसनाक वाक़या है। लेकिन फिर भी मुझे इससे ख़ुशी होती है। सत्याग्रहीको हमेशा हँसते-हँसते मरनेके लिए तैयार रहना चाहिये और दिलमें बदले या कीनेका कोई ख़याल न रखना चाहिये। कुछ लोग ग़लतीसे यह सोचने लगे हैं कि सत्याग्रहका मतलब सिर्फ़ जेल जाना या शायद लाठी खाना है, इससे ज़्यादा

www.vinoba.in

कुछ नहीं। इस तरहके सत्याग्रहसे आज़ादी नहीं आ सकती। आज़ादी हासिल करनेके लिए तो आपको बिना मारे मरनेकी कला सीखनी होगी।"

दक्षिण अफ्रीकामें गोरों और हब्शियोंकी बहुत बड़ी आबादीके बीच मुट्ठीभर हिन्दुस्तानी बसे हुए हैं। वहाँके गोरोंने हुकूमतके नशेमें चूर होकर न सिर्फ़ एक जंगली क़ानून पास किया है, बल्कि .खुद उस क़ानूनको अपने हाथमें भी ले लिया है। इस बदनाम क़ानूनके बचावमें दलील यह दी जाती है कि गोरी तहज़ीब को रंगीन लोगोंकी बढ़ती हुई बाढ़में बह जानेसे बचानेके लिए उसकी ज़रूरत थी। इस पर टीका करते हुए गांधीजीने कहा: "मैं यह कहनेकी हिम्मत करता हूँ कि जिस तहज़ीबको अपनी हिफ़ाज़तके लिए ऐसे जंगली क़ानूनकी ज़रूरत महसूस होती है, वह असलमें तहज़ीब ही नहीं है। दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी वहाँ अपनी इज़्ज़तके लिए लड़ रहे हैं। वहाँकी ज़मीन असलमें गोरोंकी ज़मीन नहीं। क्योंकि ज़मीन तो उसीकी होती है, जो उस पर मेहनत करता है। अगर दक्षिण अफ्रीकाके सभी सत्याग्रही काम आ गये, तो भी मैं उनकी मौत पर कोई आँसू नहीं बहाऊँगा। ऐसा करके वे न सिर्फ़ अपने-आपको मुक्त या आज़ाद करेंगे, बल्कि वहाँके हब्शियोंको भी रास्ता दिखायेंगे और हिन्दुस्तानकी इज़्ज़तको सलामत रक्खेंगे। मुझे उन पर नाज़ है। और आपको भी होना चाहिये। यह सब मैं आपसे इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि आप इन बातोंको सुनकर रो पड़ें या गोरों के खिलाफ़ .गुस्सेसे और नफ़रतसे भर जायँ। बल्कि मैं तो यह चाहूँगा कि आप ईश्वरसे यह मनायें कि वह गोरोंको सही रास्ता दिखाये और हमारे भाइयोंको इतनी ताक़त और हिम्मत बख्शे कि वे अख़ीर तक अपनी आन पर सचाई के साथ डटे रह सकें।"

चन्द उजली मिसालें

सत्याग्रही जिस क़दर अवसरके अनुरूप हिम्मत और त्यागका परिचय दे रहे हैं, उससे हरएक हिन्दुस्तानीका दिल गर्वसे भर उठेगा। श्रीमती डॉक्टर गुणमूको सत्याग्रही के नाते छह महीनोंकी सख्त क़ैदकी सज़ा दी गई थी। फ़ैसला सुनानेवाले मजिस्ट्रेटने उनकी सज़ा घटाकर दो महीने कर दी। इस पर उन्होंने एतराज़ किया और कहा कि औरत होनेके नाते वे अपने साथ किसी तरहकी रियायत नहीं चाहतीं। उन्होंने भी वही क़सूर किया है — बशर्ते कि वह क़सूर कहा जा सके — जो उनके दूसरे सत्याग्रही भाइयोंने किया है। मगर मजिस्ट्रेटने उनके इस एतराज़ पर ध्यान नहीं दिया। नौजवत्न सोहराबजी भी जेल चले गये हैं। अभी कुछ दिन पहले ही वे दक्षिण अफ्रीकाके नुमाइन्दोंके सरदार बनकर यहाँ आये थे। वे मरहूम पारसी रुस्तमजीके एक लायक़ सपूत हैं। जिन दिनों गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रहकी तहरीक चलाई थी, उन दिनों सोलह सालके सोहराबजीने अपने असाधारण साहसका परिचय देकर बड़ा नाम कमाया था। एक गोरा घुड़सवार सत्याग्रहियों पर अपना घोड़ा दौड़ानेकी धमकी दे रहा था। सोहराबजीने उसके घोड़ेकी लगाम थाम ली और उससे साफ़-साफ़ कह दिया कि वह अपने ऐसे तरीक़ोंसे न तो सत्याग्रहियोंको डरा सकता है और न झुका सकता है। उनकी इस हिम्मतसे एक मनहूस हालत पैदा होते-होते बच गई।

यह देखकर .खुशी होती है कि दक्षिण अफ्रीकामें जोहानिसबर्गके पादरी स्कॉट एक ऐसे गोरे सज्जन हैं, जिनकी ईसाइयत रंग-भेदकी असमानता और सत्याग्रहियोंके साथ होनेवाले बुरे बरतावको देखकर बग़ावत कर उठी है। इन सब ज़्यादतियोंके खिलाफ़ अपना विरोध ज़ाहिर करनेके लिए वे सत्याग्रहियोंके दलमें शामिल हो गये हैं और एक ऐसी जगह चले गये हैं, जो बक़ौल थोरो बेइन्साफ़ सरकारके राजमें इन्साफ़-पसन्द आदमीके लिए एक ही मौजूँ जगह है, मतलब यह कि वे जेलमें जा बैठे हैं। गांधीजीने उनके इस कामकी सराहना करते हुए कहा: "दक्षिण अफ्रीकामें किसी गोरे आदमीका रंगीन लोगोंमें मिल जाना कोई मामूली बात नहीं है। अगर सत्याग्रही अख़ीर तक मज़बूत और अहिंसक बने रहे, तो उनका भला ही होगा।"

बम्बईमें कांग्रेसकी महासमितिके सामने बोलते हुए गांधीजीने कहा था: "मुमकिन है कि दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाई आज बहुत मामूली चीज़ मालूम हो, मगर उसके नतीजे बहुत बड़े हो सकते हैं। जिस भूमिमें सत्याग्रहका जन्म हुआ था, वहीं आज वह कसौटी पर कसा जा रहा है। मुट्ठीभर हिन्दुस्तानियोंकी सफलताने, जिनमें ज़्यादातर लोग गिरमिटिया मज़दूरोंकी औलाद हैं, दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंकी ईर्ष्याको भड़का दिया है। चुनाँचे वे अब उनको बुरी तरह ज़लील करनेमें लगे हैं। कोशिश यह की जा रही है कि उनको बिलकुल अलग, गन्दी बस्तियोंमें रहनेको मजबूर किया जाय। साथ ही, उन्हें हलके दरजेका मताधिकार देकर ज़्यादा ज़लील करनेकी कोशिश हुई है। मैं यह सोचकर शर्म और रंजसे भर जाता हूँ कि ये तमाम बातें फील्ड मार्शल स्मट्सकी हुकूमतमें हो रही हैं। हमारे पाप एक अजीब ढंगसे हमारे पास लौट आते हैं। हमने अपने ही कुछ लोगोंको अछूत बना रक्खा है। नतीजा इसका यह हुआ है कि आज दक्षिण अफ्रीकाके गोरे हमारे देश-भाइयोंके साथ वहाँ अछूतोंके जैसा बरताव कर रहे हैं। हमें अपने इस कलंकको धो डालना चाहिये, और दक्षिण अफ्रीकाके अपने भाइयोंकी बहादुराना लड़ाईकी कामयाबीके लिए दुआ माँगनी चाहिये। उन्हें हमारे पैसोंकी ज़रूरत नहीं है; लेकिन हमारी पूरी-पूरी हमदर्दी और हिमायतकी ज़रूरत तो है।"

तिनका और शहतीर

जिस वक़्त गांधीजी ए० आई० सी० सी०के सामने ये बातें कह रहे थे, उनके मनमें एक दृश्य चक्कर काट रहा था। वह उन्होंने अगले दिन हरिजनोंकी उस बस्तीमें देखा था, जहाँसे मोटर पर सवार होकर वे ए० आई० सी० सी० की बैठकमें गये थे। बारिशका मौसिम होनेकी वजहसे उस दिन प्रार्थना-सभा पासके उस 'लेबर वेल्फेअर हॉल'में हुई थी, जो पिछली कांग्रेसी वज़ारतने बनवाया था। छठी जुलाईको प्रार्थनाके बाद गांधीजीने पूछा कि हॉलमें कितने हरिजन मौजूद हैं। जवाबमें एक भी हाथ न उठा। इससे उन्हें बड़ी नाउम्मीदी हुई। चूँकि वे .खुद भंगी बन गये हैं, इसलिए वे हरिजनोंकी बस्तीमें रहने गये थे। लेकिन भंगियोंकी बात तो दूर, वहाँ उस सभामें कोई हरिजन भी न था। उन्होंने लोगोंकी ओर मुखातिब होकर कहा: "इसके लिए मैं दोष आपको दूँगा, जो ग़ैरहाज़िर हैं, उनको नहीं। उनकी ग़ैरहाज़िरीकी वजह तो यह है कि सवर्ण कहलानेवाले हिन्दुओंने अछूत कहे जानेवाले लोगोंको सदियोंसे दबाये रक्खा है, और सो भी धर्म या मज़हबके नाम पर। यह हॉल तो हरिजनोंके इस्तेमालके लिए बनाया गया है। जो हरिजन नहीं हैं, वे तो यहाँ हरिजनोंकी मेहरबानीसे ही आ सकते हैं। इसलिए यहाँ आनेवालोंको चाहिये कि वे अपने साथ कम-से-कम एक हरिजनको ज़रूर ही लायें। अगर आप हरिजनोंके साथ अपना मेलजोल बढ़ायेंगे, तो छूतछात बात-की-बातमें मिट जायगी। मगर मुझे यह देखकर रंज होता है कि आपने दरअसल ऐसा किया नहीं। हरिजनोंमें कई बैरिस्टर और वकील हैं, मगर मैं देखता हूँ कि आज भी वे मलाबार हिलके बंगलोंमें रह नहीं पाते हैं। मेरी छावनीमें एक हरिजन लड़की स्वयंसेविकाका काम कर रही है। वह बी० ए०में पढ़ती है। उसमें और दूसरी लड़कियोंके दिखावेमें ऐसा कोई फ़र्क़ नहीं, जो उनकी जात बताये। फिर क्या वजह है कि यह जानने-भरसे कि वह हरिजन है, उसके साथ दूसरी लड़कियोंसे अलग ढंगका बरताव किया जाय?"

www.vinoba.in

गांधीजीने आगे कहा: "मेरी छावनीका इन्तज़ाम रखने और निगरानी करनेवाले लोग मेरे आरामका जितना और जैसा खयाल रखते हैं, उससे मैं घबरा उठता हूँ। फिर भी मुझे यहाँ रहना बहुत भारी मालूम होता है। यहाँ मेरे आस-पास हद दरजेकी गन्दगी फैली हुई है। डॉ० दिनशा महेताने मुझसे कहा है कि यहाँके पाखाने इतने गन्दे हैं कि वे उनका इस्तेमाल नहीं कर सकते। यहाँ चारों तरफ़ इतनी मक्खियाँ हैं कि उन्हें डर लगता है, कहीं मैं उन मक्खियोंकी फैलाई छूतका शिकार बनकर बीमार न पड़ जाऊँ! मुझे .खुद अपनी कोई फ़िकर नहीं है। गोकि दो-दो डॉक्टर मेरी तबियतका खयाल रखते हैं, फिर भी मैं ईश्वरको छोड़कर और किसीका भरोसा नहीं रखता। वह सर्व शक्तिमान् भगवान् मेरी तन्दुरुस्तीका खयाल रक्खेगा। लेकिन मेरे साथियोंको ईश्वरमें इस तरहकी श्रद्धा नहीं है। मुझे उनकी फ़िकर रहती है। मेरे लिए तो एक अच्छे साफ़ पाखानेका इन्तज़ाम है, लेकिन मेरे सब साथी उसका इस्तेमाल नहीं कर सकते। चुनाँचे मैं यह सोच रहा हूँ कि अगर दुबारा मुझे यहाँ आना पड़ा, तो मैं अकेला ही आऊँगा। जिस मकानमें यहाँ मैं रहता हूँ, वह एक ओवरसियरका मकान है। मेरी समझमें नहीं आता कि क्यों ये ओवरसियर और यहाँकी सफ़ाईका इन्तज़ाम करनेवाले यानी म्युनिसिपैलिटी और पी० डब्ल्यू० डी० के लोग इस सारी गन्दगीको बरदाश्त करते हैं? मेरे यहाँ आने और रहनेसे फ़ायदा ही क्या, अगर मैं उन्हें इस जगहको साफ़ और स्वास्थ्यप्रद बनानेके लिए समझा न सकूँ?"

सत्याग्रहका विषय

गांधीजीने इस बातको यहीं नहीं छोड़ा; बल्कि उन्होंने डॉक्टर सुशीला नय्यर और डॉक्टर दिनशा महेतासे कहा कि वे हरिजन-चालोंका मुआयना करके उन्हें अपनी रिपोर्ट दें। दोनों डॉक्टरोंने वहाँ जो गन्दगी और कूड़ा-करकट देखा, वह असह्य था। कई जगह गन्दे पानीकी नालियाँ कचरेसे भर गई थीं, और इस वजहसे वे ठीक तरह काम नहीं कर रही थीं। कुछ जगहें ऐसी भी थीं, जहाँ दुमंज़िलेकी मोरियाँ चूती थीं और नीचे रहनेवालोंको उनकी वजहसे तकलीफ़ होती थी। वहाँ पानीकी बेहद तंगी थी। नल दिनमें २ या ३ घण्टेसे ज़्यादा चलते ही नहीं। फ्लशका इन्तज़ाम ठीक नहीं था, इसलिए सहज ही फ्लशवाले पाखाने इतने गन्दे थे कि पूछिये न बात। गांधीजीने कहा कि उनकी समझमें नहीं आता कि इस हालतमें कैसे कोई इन पाखानोंका इस्तेमाल कर सकता है? कूड़े-करकटको इकट्ठा करने और ठिकाने लगानेका इन्तज़ाम भी बहुत ही खराब था। कूड़ा-करकट डालनेके खुले डिब्बोंसे सड़ाँध-भरी बदबू आती थी। चालोंमें रहनेवाले लोगोंकी तादाद इतनी ज़्यादा थी कि उतनी थोड़ी जगहमें वे सब कैसे रह सकते होंगे, भगवान् ही जाने! बम्बईमें आखिरी दिन प्रार्थनाके बादकी अपनी तक़रीरमें गांधीजीने कहा था: "म्युनिसिपल हाकिमोंका फ़र्ज़ है कि वे इन चालोंको सफ़ाईके खयालसे सुधारें और अगर म्युनिसिपैलिटी अपना फ़र्ज़ अदा करनेमें चूके, तो लोगोंको यह हक़ है कि वे सत्याग्रह करके भी इसका इलाज करवायें। चालोंके मालिकों, ओवरसियरों और मुन्तज़िम कारकुनोंको चाहिये कि वे इस ग़लतीको सुधारनेके लिए अपनी तरफ़से कोई बात उठा न रक्खें।"

इसी सिलसिलेमें गांधीजीने आगे कहा: "मुझे यह देखकर शरम आती है और दुःख होता है कि मेरे मुक़ाम पर रात-दिन पुलिसका पहरा रहता है। यह तो आप लोगोंके लिए भी शर्मकी बात होनी चाहिये। आपको पुलिससे कह देना चाहिये कि मैं आपकी रखवालीमें हूँ, और आप मेरी हिफ़ाज़त करेंगे। हरिजनोंको ऊँची जातवाले हिन्दुओंसे कड़ी शिकायत हो सकती है, और इसलिए मुझ पर भी उनका नाराज़ होना वाजिब ही है, गोकि मैं .खुद तो भंगी बन गया हूँ। अगर वे मुझसे नाराज़ होते हैं, और अपनी नाराज़ी मुझ पर उतारते हैं, तो इसके लिए मैं अपने मनमें उनके खिलाफ़ कोई कीना नहीं रक्खूँगा। मैं अपने बसभर बराबर ऊँची जातवाले हिन्दुओं और हरिजनोंको उनका धर्म समझाता रहा हूँ। मेरी इन तमाम कोशिशोंके बावजूद हरिजन मेरे खिलाफ़ अपने दिलमें कड़वाहट रख सकते हैं, क्योंकि आज भी छूतछात जड़मूलसे मिटी नहीं है।" अखीरमें उन्होंने कहा: "आगे जब कभी मैं यहाँ आऊँगा, तो यह उम्मीद रक्खूँगा कि यहाँ सिर्फ़ मेरे रहनेके कमरोंमें ही नहीं, बल्कि चारों तरफ़ सफ़ाई नज़र आयेगी। और, मैं यह चाहूँगा कि मेरी हिफ़ाज़तके लिए यहाँ कोई पुलिस न रहे। इन चालोंमें रहनेवाले अपने लोगोंके लिए मैं किसी तरह बोझ बनना नहीं चाहता।"

भगवान् रूठा है

जिस अहमदाबाद पर सरदार वल्लभभाई पटेलको नाज़ रहा है, और जिसकी म्युनिसिपैलिटीमें उन्होंने अव्वल दरजेका बुनियादी काम किया है, आज भगवान् उससे रूठा है। अहमदाबादके हिन्दू और मुसलमान हमेशा एक-दूसरेके साथ मिल-जुलकर शान्तिसे रहते आये हैं। लेकिन मालूम होता है कि इधर अहमदाबादवालों पर पागलपन सवार हो गया है। इससे गांधीजीको बेहद तकलीफ़ हुई है। प्रार्थनाके बादकी अपनी एक तक़रीरमें उन्होंने कहा था: "मालूम होता है कि अहमदाबादके हिन्दू और मुसलमान हैवान बन गये हैं। अहमदाबादमें पिछले दिनों जो लोग मारे गये हैं, वे सब छुरीसे या ऐसे ही दूसरे हथियारोंसे किये गये हमलोंसे नहीं मरे हैं। सचमुच यह एक शर्मकी बात है कि उनको एक-दूसरेका गला काटनेसे रोकनेके लिए पुलिस और मिलिटरीकी मदद लेनी पड़ती है। अगर एक तरफ़के लोग बदला लेना बन्द कर दें, तो दंगा आगे बढ़े ही नहीं। हिन्दुस्तानके चालीस करोड़ लोगोंमेंसे कुछ लाख लोग सही तरीक़ेसे मारे जायँ, या मर मिटें, तो उसमें हर्ज़ क्या है? अगर वे बिना मारे मरनेका सबक़ सीख सकें, तो हिन्दुस्तान, जो इतिहासों और पुराणोंमें कर्मभूमिके नामसे मशहूर है, स्वर्गभूमि बन जाय।"

गांधीजीने बम्बई सरकारके होम मिनिस्टर श्री मोरारजी देसाईसे, जो अहमदाबाद जानेसे पहले उनसे मिलने आये थे, कहा था कि उन्हें अकेले एक ईश्वरके भरोसे इस आगका सामना करना चाहिये, और इसे बुझानेमें पुलिस या मिलिटरीकी मदद न लेनी चाहिये। अगर ज़रूरत समझें, तो वे .खुद इस आगको बुझानेकी कोशिशमें श्री गणेश-शंकर विद्यार्थीकी तरह मर मिटें। श्री मोरारजी देसाईने अहमदाबाद पहुँचकर वहाँके मुसलमानों और हिन्दुओंके नुमाइन्दोंकी एक मुश्तरक कान्फरेन्स बुलाई और उनसे कहा कि अगर वे चाहें, तो शहरसे पुलिस और मिलिटरीको उठा लेनेकी उनकी तैयारी है। लेकिन आये हुए लोगोंने एक राय होकर उनसे यह कहा कि वे ऐसी कोई जोखिम उठानेको तैयार नहीं हैं। नतीजा यह हुआ कि शहरमें पुलिस और मिलिटरी बनी रही। इस पर गांधीजीने बहुत व्यथित होकर कहा: "इस तरीक़ेसे अहमदाबादमें थोड़े वक़्तके लिए दंगा-फ़सादकी रोक-थाम ज़रूर हो गई है। लेकिन आज वहाँ जो शान्ति नज़र आती है, वह तो मरघटकी शान्ति है। उस पर किसीको कोई नाज़ नहीं हो सकता। काश, हिन्दू और मुसलमान दोनों मिल जाते और उन्हें आपसके झगड़ोंसे दूर रखनेके लिए बुलाई गई पुलिस और मिलिटरीकी मदद लेनेसे वे इनकार कर देते!" गांधीजीने लोगोंको चेतावनी देते हुए कहा कि जब तक वे अमन और क़ानूनकी हिफ़ाज़तके लिए पुलिस और मिलिटरीकी मदद लेते रहेंगे, तब तक सच्ची आज़ादीकी बात निरी बकवास ही रहेगी।

पूना, ९-७-'४६

('हरिजन'से) प्यारेलाल

www.vinoba.in

हरिजनसेवक

१४ जुलाई १९४६

सच्चा ख़तरा

बम्बईमें कांग्रेसकी महासमितिमें यानी ए० आई० सी० सी० की दो दिनकी बैठकोंमें महासमितिकी मंजूरीके लिए पेश की गई वर्किंग कमेटीकी तजवीज़के ख़िलाफ़ की गई कुछ जोशीली तक़रीरोंको मैंने ध्यानसे सुना, मगर मैं तजवीज़की मुख़ालिफ़त करनेवालोंकी ओरसे पेश किये गये ख़तरोंकी तसवीरको समझ नहीं सका — उनकी बातसे सहमत नहीं हो सका। कोई भी सच्चा और पक्का सत्याग्रही अपने विरोधीकी ओरसे आनेवाले जाने-अनजाने ख़तरोंसे घबराता नहीं। हरएक फ़ौजकी तरह उसके लिए भी सच्चा डर तो अन्दरके ख़तरेका है, और होना चाहिये।

अगर विरोध या मुख़ालिफ़त पूरी जानकारीके साथ, तौल सँभालकर और पक्की बुनियाद पर न की जाय और जिस चीज़की मुख़ालिफ़त की जाती है, उससे बढ़कर काम और नतीजेका यक़ीन न दिलाया जाय, तो वह कितनी ही चतुराईके साथ क्यों न की जाय, अपने मक़सदमें नाक़ाम ही रहेगी। लोग देखें कि इस बारका विरोध इस क़िस्मका था या नहीं।

इस लेख में तो मैं अन्दर के ख़तरे की तरफ़ ही तवज्जह दिलाना चाहता हूँ। अहमियत के ख़याल से पहला ख़तरा तन और मनकी सुस्ती या काहिली का है। मस्त और सन्तुष्ट होकर जब यह सोचा जाता है कि चूँकि कांग्रेसवाले जेलख़ानोंमें रह आये हैं, इसलिए अब आज़ादी हासिल करनेके लिए उन्हें और कुछ करना ज़रूरी नहीं है, और कांग्रेस-जैसी एहसानमन्द जमातको चाहिये कि वह चुनावोंमें और ओहदोंके बँटवारेमें ऐसे कांग्रेसियोंको तरजीह देकर उनकी सेवाओंकी क़दर करे, तब उसमेंसे जड़ता पैदा होती है। यही वजह है कि लोग इनामी मानी जानेवाली जगहें पानेके लिए बेहूदे और गँवारू ढंगसे होड़ा-होड़ीमें शरीक होते हैं। इस तरह लोग दोहरी ग़लती करते हैं। कांग्रेसके कोश या लुग़तमें इनाम नामकी कोई चीज़ होनी न चाहिये। और जेल जाना तो अपने आपमें एक इनाम माना जाना चाहिये। सत्याग्रहीका वह इब्तदाई इम्तहान है। बेक़सूर मेमनेकी तरह उसकी आख़िरी मंज़िल भी क़तलख़ाना ही है। लेकिन होता यह है कि जेलके सफ़रका इस्तेमाल कांग्रेसकी पहुँचके हर ओहदेको पानेके लिए पासपोर्ट या परवानेकी तरह किया जाता है। इसलिए इस बातका अँदेशा रहता है कि कहीं सत्याग्रहीकी जेलयात्रा पेशेदार चोरों और डाकुओंकी तरह उसे गिरानेवाला पेशा न बन जाय। ऐसी हालतमें 'अण्डर ग्राउण्ड' या भूगर्भवासी रहकर काम करनेवाले मेरे मित्र जेल-यात्राको फूलोंकी सेज समझकर उससे बचना या उसे टालना चाहें, तो उसमें अचरजकी कोई बात नहीं। यह कांग्रेसके लिए उस ख़तरेकी चेतावनी है, जिसके नज़दीक वह पहुँच रही है।

जिन दोस्तोंने ब्रिटिश कैबिनेट मिशनकी दरख्वास्तवाली तजवीज़का विरोध किया, मालूम होता है, उन्हें अपने लक्ष्य या मक़सदका ठीक ख़याल नहीं। क्या फ़रासीसी, रूसी या कहिये कि अंग्रेज़ी क्रान्ति यानी इन्क़िलाबकी तरह हिन्दुस्तानकी आज़ादी भी ख़ूनसे सने इन्क़िलाबकी क़ीमत चुकाकर हासिल की जायगी? अगर ऐसा है, तब तो सीधे और सच्चे कामकी शुरुआत अभी बाक़ी है। कांग्रेसको खुल्लमखुल्ला ऐसी जमात बनानेके लिए उनको बहुत ही ख़तरनाक रास्ते पर चलना होगा। अगर छिपकर या भूमिगत होकर काम करनेका उसूल एक आम उसूल हो, और अब उसका इस्तेमाल कांग्रेसके ख़िलाफ़ भी किया जा रहा हो, तो कहना होगा कि मेरी दलीलमें कोई सार नहीं। मैं तो इसके विचारमात्रसे काँप उठता हूँ। अपनी समझदारी या बाहोशीकी ख़ातिर मैं यह उम्मीद करता हूँ कि मेरा यह ख़याल बेबुनियाद है। तो फिर साफ़ ही इन दोस्तोंका यह फ़र्ज़ हो जाता है कि वे कांग्रेसियोंसे कह दें कि चूँकि अब मुल्कमें कांग्रेसी राज या नुमाइन्दोंका राज है, फिर वह कांग्रेसकी क़िस्मका हो या मुस्लिम लीगी, इसलिए उन्हें चाहिये कि वे उसमें तफ़सीली सुधार करें और उसको क़तई ठुकरानेसे या उसकी पूरी-पूरी निन्दा करनेसे बचें। जनताकी सरकारमें, फिर वह किसी भी दरजेकी क्यों न हो, मुकम्मल अहिंसक असहयोगकी कोई गुंजाइश नहीं।

मदुरामें और इधर नज़दीक ही अहमदाबादमें आज जो पागलपनसे भरी ख़ूँरेज़ी चल रही है, उसके लिए ज़िम्मेदार कौन है? तमाम बुरी चीज़ोंको अंग्रेज़ोंकी करतूत कहकर उनके मत्थे मढ़ना बेवकूफ़ी होगी। अगर हम इस बेमानी उसूलको पकड़े रहे, तो इससे मुल्कमें परदेसी हुकूमत की, और ख़ासकर अंग्रेज़ी हुकूमतकी, जड़ हमेशाके लिए जमी रहेगी। हर हालतमें अंग्रेज़ हिन्दुस्तानसे जायँगे ही। ब्रिटिश सरकारके ऐलानसे मैं तो यह समझा हूँ कि अंग्रेज़ यहाँसे व्यवस्थित रीतिसे जाना चाहते हैं। या वे चले जायँगे, और यह मानकर कि हिन्दुस्तानने अहिंसाके रास्तेको छोड़ दिया है, वे उसे उसकी तक़दीरके भरोसे छोड़ जायँगे। इसका एक ही नतीजा होगा कि कई सशस्त्र हुकूमतें मिलकर हिन्दुस्तानके मामलेमें दस्तन्दाज़ी करेंगी। इसलिए विरोधियोंको चाहिये कि वे कांग्रेसजनोंको बतायें कि हिन्दुस्तानके लिए वे किस तरहकी आज़ादी चाहते हैं। सचमुच ही आम तौर पर सब कांग्रेसी यह नहीं जानते कि वे किस तरहकी आज़ादी चाहते हैं। वे तो तोतेकी तरह आज़ादीके मंत्रको रटते भर हैं। या आज़ादीका उनका ख़याल यह कहनेसे पूरी तरह ज़ाहिर हो जाता है कि उनकी आज़ादीका मतलब है, कांग्रेस-राज। और, उनका यह सोचना ग़लत न होगा। उन्होंने आगेकी बात सोचनेका भार वर्किंग कमेटी पर डाल दिया है। उनका यह तरीक़ा डिमॉक्रेसी या प्रजातंत्रका तरीक़ा तो हरगिज़ नहीं। सच्चे प्रजातंत्र या जमहूरियतमें हरएक मर्द और औरतको सब कुछ ख़ुद-ब-ख़ुद सोचनेकी तालीम दी जाती है। मैं नहीं जानता कि यह सच्चा इन्क़िलाब कैसे पैदा किया जा सकता है। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि सखावत या दानकी तरह हर तरहका सुधार भी घर ही से शुरू होना चाहिये।

ऐसी हालतमें अगर 'कान्स्टिटयुएण्ट एसेम्ब्ली' या विधान बनानेवाली सभा फिस हो जाती है, तो वह इसलिए फिस नहीं होगी कि अंग्रेज़ हर बार बदमाशी करते हैं, बल्कि इसलिए होगी कि हम बेवकूफ़ हैं, या क्या मैं कहूँ कि बदमाश भी हैं? हम चाहे बेवकूफ़ हों, बदमाश हों, या दोनों हों, इतनी बात मुझे साफ़ नज़र आती है कि हमें बाहरके ख़तरेकी उतनी फ़िक्र नहीं करनी चाहिये, जितनी अन्दरके ख़तरेकी। अन्दरका ख़तरा हमारी आत्माको कुरेद खाता है, जब कि बाहरका उसे चमकाता है।

बम्बई, ९-७-'४६

('हरिजन'से)

मोहनदास करमचंद गांधी

नई किताबें

	मूल्य	डाकख़र्च
ईशु ख़िस्त — (किशोरलाल घ० मशरूवाला)	०-१४-०	०-१-०
रचनात्मक कार्यक्रम — उसका रहस्य और स्थान (नई और सुधरी हुई आवृत्ति) (गांधीजी)	०-६-०	०-१-०
गो-सेवा — (गांधीजी)	१-८-०	०-५-०
एक धर्मयुद्ध — (महादेवभाई हरिभाई देसाई)	०-८-०	०-२-०
हिन्दुस्तानी बालपाठावली —	०-५-०	०-१-०

www.vinoba.in

'कुछ खादी-भण्डारके बारेमें'

३ जूनकी 'खादी-पत्रिका'में इस नामका एक लेख छपा है, जो कामका है। वह नीचे दिया जाता है :

"भण्डारके कामकाजमें बहुत फुर्तीसे कुछ फेरफार करनेका इरादा है। अब तक बम्बईके भण्डारोंमें बदलेमें थोड़ा सूत लेकर खादी बेचनेका सिलसिला रक्खा था। फिर भी लोग .खुद सूत कातने नहीं लगे हैं। हमें ऐसा मालूम होता है कि भण्डारमें आनेवाला ज्यादातर सूत खरीदा हुआ होता है। १ ली जुलाईसे एक गुण्डी सूतमें सिर्फ़ २ रुपयेकी खादी खरीदी जा सकेगी, और इस वजहसे खादीकी बिक्री पहलेके मुक़ाबले बहुत कम हो जायगी। आजकल जो खादी बिकती है, उसकी कई वजहोंमें एक खास वजह मिलके कपड़ेका मौजूदा कण्ट्रोल है। हमारा तजरबा है कि इस वजहसे भी मिलका कपड़ा पहननेवाले बहुतसे लोग खादी खरीदकर ले जाते हैं। खरीदारोंसे सूत लेते वक़्त हम उनसे यह लिखवाते तो हैं कि आया सूत .खुद उनका काता है, उनके घरवालोंका काता है या घरके नौकरसे कतवाया हुआ है। फिर भी हमें अफ़सोसके साथ यह कहना पड़ता है कि सिर्फ़ खादी खरीदनेके खयालसे बहुतसे गाहक इस मामलेमें जितनी खबरदारी और जवाबदारी उन्हें रखनी चाहिये, रखते नहीं हैं। खादीकी सच्ची दृष्टिके तईं खरीदारोंकी ऐसी लापरवाहीको निबाह लेना खादीके हितकी दृष्टिसे हमको मुनासिब नहीं मालूम होता। भण्डारमें अब दूसरे सूबोंकी खादी कम ही आयेगी। खादी स्वावलम्बनके खयालसे ही पैदा की जाती है। 'खादीकी बिक्री,' यह मुहावरा क़रीब-क़रीब बेमेल चीज़ है — माना जाना चाहिये। ऐसी हालतमें हमको भण्डारके इन्तज़राममें ज़रूरतके मुताबिक फेरफार करने पड़ते हैं। १ली जुलाईसे हम दादर और माटुंगाकी अपनी दोनों दुकानोंको बन्द कर देंगे। पिछले ३ महीनोंसे माटुंगामें सिर्फ़ कातनेकी और उससे पहलेकी क्रियाओंकी तालीम दी जाती थी, और दादर-भण्डारमें खादी बिकती थी; लेकिन अब १ली जुलाईसे ये दोनों शाखायें फ़ौरन बन्द कर दी जायँगी। इसके अलावा, गिरगाँववाली खादी-प्रिंटिंगकी दुकानमें चरखा-संघकी तरफ़से तालीमका जो इन्तज़ाम किया गया था, संघकी ओरसे वह भी बन्द कर दिया जायगा, और वह दुकान खादी-प्रिंटिंगके ट्रस्टियोंको फिर सौंप दी जायगी। खादी-प्रिंटिंगके ट्रस्टी उसी जगह इस तालीमका काम जारी रक्खेंगे, और साथ ही वहाँ खादी-बिक्रीका भी थोड़ा इन्तज़ाम करेंगे।

"इस तरह काम कम कर देनेकी वजहसे हमें तुरन्त ही अपने १५ कारकुनोंको रुखसत देनी पड़ी है।

"जिस दिनसे नई नीतिका अमल शुरू हुआ, उसी दिनसे पूज्य गांधीजी कहते रहे हैं कि 'भण्डारोंकी शकल बदलो'। इस खयालसे हमने भी कहीं बुनाईका और कहीं तालीमका इन्तज़ाम किया। मगर यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरहके मोटे फेरफारोंसे भण्डारकी शकल बदली है। ऐसे फेरफार करनेके बाद हमने महसूस किया कि भण्डारमें इस तरहकी उलटा-पलटीके बाद हमारे अपने खयालोंमें महत्त्वका उलट-फेर होना ही चाहिये। चुनाँचे भण्डारोंमें काम करनेवालोंके लिए खादीके इम्तहान शुरू किये गये और कुछ दूसरी बातों पर भी अमल किया गया।

"लेकिन मोटे तौर पर भण्डारकी शकल बदलनेसे या कारकुनोंके लिए बनाये गये क़ानूनोंमें रद्दोबदल करनेसे यह चीज़ बनती नहीं। और जब तक यह नहीं होता, भण्डारोंका मोटा फेरफार बेकार ही माना जायगा। जिन दिनों गाहक तरह-तरहकी फ़ैशनेबल खादी खरीदनेकी तबियत रखनेवाले थे, उन दिनों भण्डारकी शकल वैसी दुकानकी थी। आज भण्डार चाहता है कि खादी पहननेवालोंकी मनोवृत्ति बदले। अब भण्डार खादी-बिक्रीकी जगह बनना नहीं चाहता। अब वह लोगोंको कातनेके कामोंकी तालीम देनेकी जगह बनना चाहता है। भण्डार उम्मीद करता है कि अब वह जुलाहों और दूसरे कारीगरोंके मिलनेकी और मिलकर काम करनेकी जगह बने। हम भण्डारकी शकल बदलते रहेंगे। उसी तरह अगर बम्बईके खादी पहननेवाले लोग अपने खयालोंको भी बदलते रहें, तो भण्डारको एक सच्ची शकल मिले और यह माना जा सके कि वह बम्बईवालोंके मनका सच्चा अक्स बन गया है। हम उम्मीद करते हैं कि बम्बईके गाहक दोनोंके बीच ऐसा मेल बनाये रहेंगे।"

पढ़नेवाले देखेंगे कि इसमें जिस मक़सदका ज़िक्र है, उसकी कामयाबी काम करनेवालोंकी श्रद्धा (एतक़ाद) और कुशलता (हुनरमन्दी) पर मुनहसिर है।

बम्बई, ६-७-'४६

('हरिजनबन्धुसे') मोहनदास करमचंद गांधी

नई वर्किंग कमेटीकी कामयाबी

कांग्रेसकी वर्किंग कमेटीमें इस बार कुछ नये भाई-बहन आये हैं। इस नये दलकी कामयाबी जितनी काम करनेके इसके तरीक़े पर मुनहसिर है, उतनी ही पुरानोंके रुखपर भी मुनहसिर है। अगर नया दल पुराने दलसे अलग होकर काम करेगा, तो वह अपने बापकी विरासतसे इनकार करनेवाले लड़केकी तरह ज़रूर ही नाकाम होगा। जो लोग वर्किंग कमेटीसे हट गये हैं, अगर वे अपनी जगह लेनेवालोंकी हर तरह मदद न करेंगे, तो भी नया दल नाकाम रहेगा। मौलाना साहबने उनको बड़प्पन बख्शनेके खयालसे नहीं, बल्कि अपने-अपने सूबोंमें उन्होंने जो सेवायें की थीं उनकी वजहसे अपनी कमेटीमें लिया था। जब नया .खून दाखिल करनेकी ग़रज़से या ऐसे ही किसी दूसरे मुनासिब और ज़रूरी कारणसे कोई सेवक दूसरे सेवकके लिए अपनी जगह खाली करता है, तो इसका यह मतलब नहीं कि वह अपनी सेवकाईको भी छोड़ देता है। इसलिए उम्मीद की जानी चाहिये कि वर्किंग कमेटीके पुराने मेम्बर नये मेम्बरोंको अपने तजरबेसे पूरा-पूरा फ़ायदा पहुँचायेंगे।

नई कमेटीमें जो सबसे बड़ा फेरफार हुआ है वह है, उसके जनरल सेक्रेटरीका रिटायर होना। पिछले दस सालोंसे लगातार वे इस ओहदे पर काम करते रहे हैं। उनकी जगह काम करनेवालोंको, जिनके लिए यह काम बिलकुल नया है, और जो वर्किंग कमेटीके नये मेम्बर भी हैं, उनकी मददकी ज़रूरत बराबर बनी रहेगी। मैं जानता हूँ कि आचार्य कृपालानीसे उनको सब तरहकी ज़रूरी मदद मिलती रहेगी। कांग्रेसकी तवारीखमें यह पहला ही मौक़ा है कि जब एक बहनने जनरल सेक्रेटरीका ओहदा सँभाला है। और यह एक अच्छी चीज़ है। गुजरात विद्यापीठके शुरूके दिनोंमें श्रीमती मृदुला साराभाई आचार्य कृपालानीकी विद्यार्थिनी (तालिब-इल्म) रह चुकी हैं। इसलिए अपने हिस्से आये कठिन काममें उन्हें अपने आचार्यकी पूरी रहनुमाई मिलती रहेगी।

इस नये फेरफारसे जिनका मन शंकित हो उठा हो, उनसे मैं यह कहूँगा कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू .खुद ही नयों और पुरानोंके बीच एक उम्दा और मज़बूत पुल बनकर रहेंगे; और उन्हें पुराने दलके कुछ क़ाबिल-से-क़ाबिल साथियोंकी मदद रहेगी ही। इसलिए किसीको अपने मनमें यह डर नहीं रखना चाहिये कि नई कमेटी पुरानी परम्पराको छोड़कर चलेगी। एक इनसानकी तरह राजनीतिक संस्था या सियासी जमातके लिए भी .खूनका तन्दुरुस्त दौर ज़रूरी है।

पूना, १०-७-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

www.vinoba.in

तीन शुद्ध बलिदान

अहमदाबादसे श्री हेमन्तकुमारभाई अपने एक खतमें गांधीजीको लिखते हैं :

"कलके दंगेमें श्री वसन्तराव हेगिष्टे और जनाब रज्जबअलीका दंगा रोकनेकी कोशिश करते हुए एक साथ एक ही जगह ख़ून हो गया। पहले वे दंगेको रोकनेके लिए सीचीरोड (गांधीरोड)की तरफ़ रवाना हुए। रास्तेमें उन्होंने देखा कि हिन्दुओंका एक दल किसी मुसलमानका ख़ून करनेके लिए उस पर टूट पड़ा है। उन्होंने हमलावर हिन्दुओंसे कहा : 'पहले हमींको मार डालो, फिर इन्हें मारना।' अपने इन दृढ़ता भरे शब्दों और ऐसे मज़बूत रुखकी वजहसे वे उस मुसलमानको बचा सके। वहाँसे वे सूधा कांग्रेस कमेटीके भद्रवाले मकान पर पहुँचे। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि जमालपुरमें एक हिन्दू मुहल्लेके चारों तरफ़ मुसलमानोंकी बस्ती है और वहाँके हिन्दुओंकी जान और माल ख़तरेमें है। इसलिए वे मुसलमानोंको समझाने चल पड़े। वहाँ दोनों पर खंजरोंसे सख्त हमले किये गये और दोनों वहीं काम आये। हिन्दू-मुसलमान दोनोंका ख़ून साथ ही बहा। श्री वसंतराव कोई बत्तीस सालके नौजवान थे। सन् १९३० में धरासणाके हमलेके वक़्तसे वे कांग्रेसकी लड़ाइयोंमें हमेशा शामिल होते रहे थे। वे हिन्दुस्तानी-सेवादलके एक अगुआ थे। जनाब रज्जबअली भी भावनगर और धन्धुकाके एक खास काम करनेवाले थे। उन्होंने भी कांग्रेसकी लड़ाइयोंमें ख़ासा हिस्सा लिया था। वे भी हिन्दुस्तानी-सेवादलके मेम्बर थे। उनकी उमर क़रीब पचीस सालकी थी।

"इस तरह एक हिन्दू और एक मुसलमानने हाथसे हाथ मिलाकर दंगेका शुद्ध अहिंसक रीतसे सामना किया और अपनी जान क़ुरबान करके दोनों शहीद हुए।"

गांधीजीको इन दो भाइयोंकी मौतकी ख़बर पहले ही मिल चुकी थी। दूसरी तारीखको पूनामें प्रार्थनाके बाद भाषण करते हुए उन्होंने अहमदाबादके दंगे पर अपना अफ़सोस ज़ाहिर किया और कहा था: "अहमदाबाद पुराना शहर है। वहाँ एक बढ़िया म्युनिसिपैलिटी काम कर रही है। उसे बनानेमें सरदार पटेलका बहुत हाथ रहा है। वहाँ सब क़ौमोंके लोग शान्ति (अमन)से रहते थे। आज वहाँके हिन्दू और मुसलमान दोनों पागल हो गये हैं। यह कितनी शर्म और अफ़सोसकी बात है कि वे एक-दूसरेको छुरियोंसे मारते हैं? अगर दोमेंसे एक भी अपना पागलपन छोड़ दे, तो सारा झगड़ा एक मिनटमें खतम हो जाय।

"तीन कार्यकर्ता — दो हिन्दू और एक मुसलमान — दंगा मिटानेके खयालसे गये और उसी कोशिशमें काम आये। मुझे उनकी मौतका दुःख नहीं होता। रुलाई नहीं आती। इसी तरह श्री गणेशशंकर विद्यार्थीने कानपुरके दंगेमें अपनी जान क़ुरबान की थी। दोस्तोंने उनको रोका और कहा था: 'दंगेकी जगह न जाइये। वहाँ लोग पागल हो गये हैं। वे आपको मार डालेंगे।' लेकिन गणेशशंकर विद्यार्थी इस तरह डरनेवाले नहीं थे। उन्हें यक़ीन था कि उनके जानेसे दंगा ज़रूर मिटेगा। वे वहाँ पहुँचे और दंगेके जोशमें पागल बने लोगोंके हाथों मारे गये। उनकी मौतके समाचार सुनकर मुझे ख़ुशी ही हुई थी। यह सब मैं आपको भड़कानेके लिए नहीं कहता। मैं तो आपको यह समझाना चाहता हूँ कि आप मरनेका सबक़ सीख लें, तो सब खैर-ही-खैर है। अगर गणेशशंकर विद्यार्थी, वसन्तराव और रज्जबअली-जैसे कई नौजवान निकल पड़ें, तो दंगे हमेशाके लिए मिट जायँ।

"आज अहमदाबादमें पुलिस और मिलिटरीकी मददसे काम हो रहा है। लेकिन आपको समझना चाहिये कि पुलिस और मिलिटरीकी मदद लेकर हम उनके गुलाम बनते हैं। अगर आपको सच्ची आज़ादी हासिल करनी है, तो आप उनका आसरा छोड़कर अकेले ईश्वरके भरोसे मरनेका सबक़ सीख लीजिये। इसमें सब बातें आ जाती हैं। मारकर मरना तो बहुत लोग जानते हैं। आपको बिना मारे मरना है। हिन्दुस्तानके चालीस करोड़ लोगोंमेंसे कुछ लाख लोगोंका इस तरह मर जाना कौन बड़ी बात है? अगर ऐसा हुआ, तो हिन्दुस्तानकी यह कर्मभूमि स्वर्गभूमि बन जायगी।"

पूना, ८-७-'४६

('हरिजनबन्धु'से) प्यारेलाल

दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह पर

कांग्रेसकी महासमितिका ठहराव

७ जुलाई, '४६को बम्बईमें कांग्रेसकी महासमिति यानी ए० आई० सी० सी०ने दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके बारेमें नीचे लिखा ठहराव मंजूर किया है:

कांग्रेसकी महासमितिकी इस बैठकको यह जानकर रंज हुआ कि दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी हिन्दुस्तानियोंको एक बार फिर सत्याग्रहकी जन्मभूमिमें एक ऐसे क़ानूनके खिलाफ़ सत्याग्रह छेड़ना पड़ा है, जिसके मुताबिक़ उन पर रंग-मेदकी वजहसे लगी रोक उस रोकसे भी ज्यादा बुरी है, जिसके खिलाफ़ उन्होंने सन् १९०७ से १९१४ तक बहादुराना लड़ाई लड़ी थी। वहाँके मुट्ठीभर सत्याग्रहियोंने अपनी राहमें आनेवाली ज़बरदस्त मुश्किलोंके खिलाफ़ जो बहादुराना मगर असमान लड़ाई छेड़ रक्खी है, उस पर यह महासमिति उन्हें मुबारकबाद देती है।

महासमितिको यह जानकर ख़ुशी हुई है कि इस बहादुराना तहरीककी रहनुमाई कुछ डॉक्टर और दूसरे ऐसे भाई-बहन कर रहे हैं, जिनमें पारसी, ईसाई, मुसलमान और हिन्दू, सभी शामिल हैं।

महासमितिको यह जानकर भी ख़ुशी हुई कि पादरी स्कॉट-जैसे कुछ गोरे लोगोंने भी सत्याग्रहियोंका साथ दिया है। महासमितिकी यह बैठक उन चन्द गोरोंकी उस करतूतकी निन्दा करती है, जिसके ज़रिये उन्होंने 'लिंच लॉ'के नामसे बदनाम जंगली तरीक़ेका इस्तेमाल करके सत्याग्रहियोंमें दहशत भरना और उनसे उनको ज़लील करनेवाला क़ानून मनवाना चाहा है।

यहाँ यह ज़िक्र करना ज़रूरी है कि वहाँके ज्यादातर हिन्दुस्तानी दक्षिण अफ्रीकामें ही पैदा हुए हैं, और उनकी परवरिश भी वहीं हुई है। हिन्दुस्तानकी हस्ती तो सिर्फ़ उनकी कल्पनामें ही है। परदेसमें बसे इन हिन्दुस्तानियोंने यूरोपियन तौर-तरीक़ोंको अपना लिया है, और अंग्रेज़ी ज़बान उनकी अपनी ज़बान-सी बन चुकी है।

महासमितिकी इस बैठकको यह जानकर बहुत सन्तोष है कि हिन्दुस्तानी सत्याग्रही अपनी तहरीकको हर तरहकी हिंसासे दूर रखकर बिलकुल अहिंसक तरीक़ेसे, शानके साथ और मनमें किसी तरहकी कड़ुवाहट न रखते हुए चला रहे हैं। इस तरह वे न सिर्फ़ अपनी इज़्ज़तके लिए, बल्कि हिन्दुस्तानकी इज़्ज़तके लिए भी मुसीबतोंका सामना कर रहे हैं। अपनी इस बहादुराना मुखालिफ़तके ज़रिये उन्होंने दुनियाके तमाम शोषित या लूटे-खसोटे लोगोंके लिए एक बढ़िया मिसाल क़ायम कर दी है।

महासमितिकी यह बैठक दक्षिण अफ्रीकामें बसे हुए हिन्दुस्तानियोंको यक़ीन दिलाती है कि उनके इस असमान संघर्षमें हिन्दुस्तान पूरी तरह उनके साथ है, और इस बैठककी यह मज़बूत राय है कि अगर वे इस संघर्ष या जद्दोजहदमें बराबर लगे रहे, तो उनकी कोशिशें ज़रूर ही कामयाब होंगी।

यह बैठक वाइसरायसे अपील करती है कि वे इसके हक़में अपनी तमाम कोशिशोंका इस्तेमाल करें और ब्रिटिश सरकारको भी इस तहरीककी ताईद करनेके लिए तैयार करें। कमेटी हिन्दुस्तानमें बसे हुए यूरोपियनोंसे अपील करती है कि वे दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंकी गुण्डागीरीके और एशियावालोंके और रंगीन लोगोंके खिलाफ़ बनाये गये क़ानूनके विरोधमें अपनी आवाज़ उठायें।

www.vinoba.in

मसूरीका कलंक

किसी भी शौक़ीन मुसाफ़िरको किन्क्रेग (मसूरी) स्टेशन पर उतरते ही सबसे पहला दृश्य (नज़ारा) चिथड़ोंमें लिपटे, अधनंगे, मैले-कुचैले, बदबूवाले आदमियोंके गिरोहका दिखाई देता है। भूखे कुत्ते जिस तरह रोटीके टुकड़े पर झपटते हैं, उसी तरह वे मुसाफ़िरके सामान पर टूट पड़ते हैं, और पुलिसका जवान उन्हें अपने कोड़ेसे रोकनेकी कोशिश करता है। लेकिन सामान उठानेके लिए होनेवाली इस धक्का-मुक्कीमें अगर कोई 'गन्दा' कुली मुसाफ़िरसे टकरा जाता है, तो उसे लाल-पीली आँखें दिखानेके सिवा वह कुलियोंकी और किसी बात पर शायद ही ध्यान देता है। आखिर कोई नसीबवर कुली सामान उठा लेता है, दूसरा कोई नसीबवर रिक्शावाला इस मानवी (इनसानी) बोझको उठा लेता है, और दोनोंको किसी फ़ैशनेबल होटलके सामने उतार दिया जाता है। कुछ आने या एक-दो रुपये उन मज़दूरोंकी तरफ़ फेंक दिये जाते हैं, और वह मौजी मुसाफ़िर जल्दी ही मसूरीके राग-रंगमें खो जाता है। वह कहता है: "यह सब कितना सुन्दर है! ये सिनेमाघर, नाच-गानके ये जलसे, स्केटिंग, घुड़सवारी और इन सबसे बढ़कर यह फ़ैशनेबल समाज, मौज-शौक़के सिवा जिसका दूसरा कोई मक़सद नहीं!" देखते-देखते छुट्टियाँ खतम हो जाती हैं, और एक रोज़ फिर वह गन्दा, फटेहाल कुली बुलाया जाता है। वह सामान उठा लेता है और वापस जानेवाला मुसाफ़िर प्यासी और आतुर आँखोंसे सेवाय और हैकमेन होटलोंकी तरफ़ देर तक देखता रहता है। लेकिन अपने सामने चलनेवाले दुख-दर्दभरे आदमियों का वह शायद ही खयाल करता है। वह यह कभी नहीं सोचता कि ये फटेहाल, गन्दे कुली भी उसीके जैसे आदमी हैं।

हमारे मसूरीमें रहनेके दिनोंमें गांधीजीने मुझे इन्हीं अभागे, ईश्वर द्वारा भुलाये गये, रिक्शावालों, सामान ढोनेवाले कुलियों और भंगियोंके घरोंकी जाँच करनेके लिए भेजा था। दिल्लीके श्री ब्रजकिशन चाँदीवाले मेरे साथ थे। रातमें जहाँ उजालेका कोई इन्तज़ाम नहीं रहता और दिनमें भी जिन पर चलनेमें घिन आती है, ऐसे गन्दे, बदबूदार, सँकड़े रास्तोंपरसे गुज़रते हुए हम आदमियोंकी उन माँदोंमें पहुँचे, जहाँ मसूरीके मौज-शौक़में जरा भी खलल न डाल सकनेवाले फ़ालतू लोग सही-सलामत तरीक़ेसे ठूँस कर रखे जाते हैं।

घरोंकी हालत

इन मज़दूरोंके घरोंकी हालत किसीके भी मनमें उथल-पुथल मचा देनेवाली है। घरोंकी तादाद बहुत थोड़ी है। उनमें न काफ़ी हवा आती है, न काफ़ी उजाला। उनकी बनावट भी बहुत बुरी है। छठे-चौमासे ही कभी उनकी मरम्मत होती है। बरसातके दिनोंमें नीचेके कोठेकी दीवारोंसे अक्सर पानी झरता रहता है, और फ़र्श पर बाहरका पानी भर जाता है। आम तौर पर ७'×७'×८'के कमरोंमें सोलह-सोलह लोगोंको अपनी गिरस्ती, जलाऊ लकड़ी, चूल्हे और दूसरी कई चीज़ोंके साथ रहना पड़ता है। ज़ाहिर है कि उनमेंसे ज़्यादातर लोगोंको बाहर खुलेमें, पहाड़ी चट्टानोंके नीचे, दुकानोंके बरामदोंमें या फ़ुटपाथ पर भी सोना पड़ता है। उनके पास ओढ़नेको भी पूरे कपड़े नहीं होते। हमें कहा गया कि वहाँ क़रीब १० आदमी हर साल सर्दियोंमें ठिठुर कर मर जाते हैं।

रोज़ी कमानेकी उम्मीद लेकर मसूरीमें दाखिल होनेवाले एक मज़दूरकी जेबमें सिर्फ़ चार-छह आने होते हैं। शहरमें उसे पाँव रखनेकी भी जगह नहीं मिलती। अक्सर उसे जाड़ेमें और कभी-कभी पड़ते पानीमें पहाड़की चट्टानोंकी आड़में रात काटनी पड़ती है। अगर उसकी तक़दीरसे पहलेसे ही उसके कोई दोस्त मसूरीमें आ बसे हों, तो उसे अपना सामान रखने और खाना पकाने भरकी जगह मिल जाती है। मगर रातमें तो उसे निर्दय आसमानकी ही शरण लेनी पड़ती है। ७'×७'×८' के कमरेमें १६ जनोंका सो सकना नामुमकिन है।

पाखाने

पाखानोंकी तादाद नाकाफ़ी है, और कई जगह वे रहनेके मकानोंसे बड़ी दूर होते हैं। एक जगह तो लगभग १०० आदमियोंके लिए सिर्फ़ एक पाखाना है, वह भी फ्लश सिस्टमवाला नहीं, जिससे टंकीमेंसे पानी छोड़कर मैला बहाया जा सके। पाखानों तक जानेके रास्ते जोखिमवाले और बिना बत्तीके हैं। इसलिए रातमें वहाँ तक पहुँचना लोगोंके, खासकर औरतों और बच्चोंके, लिए बहुत मुश्किल होता होगा।

पानी

घरोंसे बड़ी दूर म्युनिसिपैलिटीके कुछ नल लगे हुए हैं। उनके नीचे नहानेकी मनाई है। इन मज़दूरोंके लिए आम ग़ुसलखानोंका इन्तज़ाम नहीं है। इसलिए नहाने-धोनेका 'शौक़' वे कभी-कभी ही पूरा कर पाते हैं। गरमियोंमें पानीका खर्च घटानेके लिए म्युनिसिपैलिटीके नल दिनमें थोड़े वक़्तके लिए बन्द कर दिये जाते हैं। इससे मज़दूरों और रिक्शाकुलियोंकी बेहालीका अन्दाज़ा आसानीसे लगाया जा सकता है।

नेपालियोंके मकान

किन्क्रेगके रास्तेसे नीचेकी ओर नज़र डालने पर हमने कई कुलियोंको धूप खाते हुए देखा। कुछ बैठे हुए थे, कुछ लेटे हुए थे, और कुछ अपने कपड़ोंमेंसे या एक-दूसरेके सिरोंसे जूँ निकाल रहे थे। वे सब लगभग ३५'×१०'×११'के एक कमरेमें रहते थे, जिसके ३ हिस्से कर दिये गये थे। मुझसे कहा गया कि हरएक हिस्सेमें क़रीब ३० कुली रहते हैं। उस दो खिड़कियों और तीन दरवाज़ोंवाले एक कमरेमें कुल मिलाकर १०० कुली रहते हैं। छतमें गन्दे चिथड़ों और जलाऊ लकड़ीके गट्ठर लटक रहे थे। इससे कमरेकी खुली जगह बहुत कुछ रुक गई थी। सारा घर धुएँसे भरा हुआ था। हमारा तो वहाँ दम घुटने लगा था।

वे जो खाना खा रहे थे, वह घिनौना और अरुचिकर था। आटा अजीब-सी भोंडी मिलावटका दिखाई देता था, और रोटियाँ खाने लायक़ नहीं थीं। गांधीजीको हमने उसका नमूना लाकर दिखाया। उन्होंने कहा: "इसके बुरेपनका बयान नहीं किया जा सकता।" साग-सब्ज़ी उनके लिए शौक़की चीज़ है। आमतौर पर वे लोग आटे, प्याज, नमक और मसालेको घोलकर उसकी रबड़ी बना लेते हैं और पी जाते हैं। ऐसी हालतमें कब्ज़ियत और आँतोंके वायुगोला वग़ैरा दर्द उन्हें तकलीफ़ दें, तो कोई ताज्जुब नहीं। खुजली, जूँ और फेफड़ोंके दर्दकी शिकायत उनमें आमतौरसे पाई जाती है। रिक्शा खींचनेवाला कुली २ या ३ साल बाद ज़िन्दगी भरके लिए निकम्मा हो जाता है। बोझा ढोनेवाला कुली एकाध साल ज्यादा खींच ले जाता है। भारी बोझ उठानेके कारण और सामानसे बँधी हुई रस्सीको सिरपर लपेटनेकी वजहसे लम्बे अरसे तक सिरपर जो दबाव पड़ता है, उससे कुलीके चेहरे पर मूढ़ताकी छाप-सी बैठ जाती है।

मापबन्दी

वे लोग आम तौर पर भुखमरीकी शिकायत करते हैं और बद-इन्तज़ामी पर तमतमा उठते हैं। ख़ुराकके नाते वे सिर्फ़ रोटी पर ही जीते हैं। इसलिए अनाजका उनका राशन एक सेरसे घटाकर छह छटाँक कर देनेसे उन्हें बड़ा दुःख होता है। परवानेवाले मज़दूरोंका राशन आठ छटाँक नियत किया गया है। लेकिन रास्तों पर काम करनेवाले लद्दाखी मज़दूरोंको अभी तक छह छटाँक अनाज ही दिया जाता है। मुझसे कहा गया है कि इसकी वजहसे कई मज़दूर मसूरी छोड़कर चले गये हैं।

डॉक्टरी मदद

वहाँ एक सिविल अस्पताल और दो धर्मादा दवाखाने हैं। ये दो दवाखाने अच्छा काम कर रहे हैं। लेकिन मज़दूरोंकी घनी और दूर-दूर फैली हुई आबादीको देखते हुए यह मदद काफ़ी नहीं कही जा सकती। वे मुक़र्रर वक़्त पर दवाखानोंमें जा नहीं सकते।

www.vinoba.in

दरअसल देखा जाय, तो डॉक्टरी मदद और सेहतसे ताल्लुक़ रखनेवाली जानकारी उनके घरों तक पहुँचाई जानी चाहिये ।

माली हालत

ज्यादातर मज़दूर आसपासके पहाड़ोंसे आते हैं । वहाँके लोगोंकी खेती इतनी कम फ़सल देनेवाली होती है कि कुनबेके ज्यादातर लोगोंको नौकरीकी तलाशमें बाहर निकलना पड़ता है । मसूरी पहुँचने पर उन्हें शुरूके खर्चके लिए थोड़ा क़र्ज़ लेना पड़ता है । इस तरह वे उन सूदखोर बनियोंके पंजेमें फँस जाते हैं, जो शुरूसे ही उन पर अपना क़ाबू जमा लेते हैं । ऐसे लोग जब मसूरी आवें, तो यह निहायत ज़रूरी है कि शुरूमें उन्हें म्युनिसिपैलिटी या दूसरी किसी संस्था या जमातकी तरफ़से नफ़ेका खयाल छोड़कर पैसेकी मदद दी जाय ।

उनकी आमदनी हर महीने बदलती रहती है । कामके मौसिममें उन्हें महीनेके ६०) तक मिल जाते हैं, और कामकी कमीके दिनोंमें आमदनी २५) माहवार तक उतर आती है। उनकी औसत माहवारी आमदनी ४०) तक मानी जा सकती है, और खर्चका औसत ३०) । आमतौर पर गरमीके मौसिममें वे क़रीब ५०) बचा लेते हैं । यह रक़म वे सरदियोंमें अपने लिए .खुराक हासिल करनेमें और घर पर रहनेवाले परिवारके लोगोंकी मदद करनेमें खर्च करते हैं । सरदीके मौसिममें उनके परिवारवालोंको मजबूरन् कुछ महीने बेकार रहना पड़ता है । बाक़ी महीनोंमें वे लोग थोड़ी खेती करते हैं । लेकिन खेतीकी उपज इतनी कम होती है कि उसके लिए की गई मेहनत बेकार-सी हो जाती है। रिश्वतखोर पुलिस अलग उनकी इस न-कुछ-सी पूँजीमेंसे कुछ हिस्सा छीन लेती है । मेरे मसूरीमें रहते मैंने इस तरहकी कई शिकायतें सुनीं । मज़दूर-संघ-जैसी किसी संस्थाको चाहिये कि वह इस तरहकी शिकायतोंको दर्ज करके उनकी जाँच करे और इस बुराईको मिटानेकी कोशिश करे । यह भी कहा जाता है कि मसूरीसे थोड़ी खरीदी करके जब मज़दूर अपने घर लौटते हैं, तो टेहरी राजके जकाती नाके पर घूसखोर अफ़सर भी उन्हें मूँड़ लेते हैं ।

इसके अलावा, रिक्शाके मालिक रिक्शा कुलियोंसे उनकी आमदनीका ३२% ले लेते हैं । कुलियोंके लिए यह बहुत भारी पड़ता है। माल लाने-लेजानेवाली कंपनियों या रेलवेका माल ढोनेवाले कुलियोंको छोटे-छोटे अफ़सरोंको जो रिश्वत देनी पड़ती है, वह उन्हें बहुत महँगी पड़ती है ।

यह तो रिक्शा खींचनेवाले और बोझा ढोनेवाले मज़दूरोंकी बात हुई । सड़क पर काम करनेवाले लद्दाखी मज़दूरोंकी आमदनी भी क़रीब-क़रीब इतनी ही होती है, यानी वे ३०से ४० रुपये माहवार तक कमा लेते हैं । इनके अलावा, १०-१२ बरसके 'टोकरीवाले' लड़के होते हैं, जो बाज़ारमें खरीदी करने आये लोगोंका माल ढोते हैं । कभी-कभी उन्हें खानेभरको पैसे मिल जाते हैं । कभी उन्हें अपने बड़ोंकी कमाई पर जीना पड़ता है । झाड़ू लगानेवाले भंगियोंकी बात इनसे अलाहिदा है । म्युनिसिपैलिटीके नौकर होनेके कारण उन्हें हर माह २७) से ३१) तक निश्चित तनख्वाह मिलती है, साथ ही उन्हें कामके मुताबिक़ २७) महँगाई भत्ता भी दिया जाता है ।

कुछ सुझाव

थोड़ेमें :

(१) अपनी ज़रूरतके मुताबिक़ सरकारकी मदद लेकर भी म्युनिसिपैलिटीको इन कुलियोंके लिए ऐसे आरोग्यप्रद (सेहत बढ़ानेवाले) मकान बनवाने चाहिये, जिनमें .गुसलखानों और पाखानोंका ठीक-ठीक इन्तज़ाम हो । अगर इसके लिए काफ़ी रक़म न मिले, तो मौज-शौक़के साधनों पर ज्यादा कर लगाकर यह रक़म पूरी की जानी चाहिये — मसूरीमें इसके लिए काफ़ी गुंजाइश है । परोपकारी धनी लोग भी इनके लिए साफ़-सुथरे मकान बनवा सकते हैं, और नफ़ेका खयाल छोड़कर इनसे वाजिब भाड़ा ले सकते हैं ।

(२) मज़दूरोंको संगठित करना चाहिये और उन्हें सहकारिताकी व साफ़-सुथरी रहन-सहनकी तालीम देनी चाहिये । उनमें तकली और ऊनकी कताईका काम शुरू किया जा सकता है । खासकर रिक्शा खींचनेवाले कुलियोंको इससे बड़ा फ़ायदा होगा, जिन्हें दिनमें कई बार बड़ी देर तक बेकार बैठे रहना पड़ता है । ऊन खरीदना, सूत बुनवाना, और कपड़ा बेचना, ये सब काम सहकारी तरीक़े पर चलाने चाहिये ।

(३) मज़दूर-संघके प्रोग्राममें कामकी पाली व कामके घण्टे बाँधना और कंपनियोंके मुकादमोंके .जुल्मोंसे मज़दूरोंको बचाना वग़ैरा काम शामिल किये जाने चाहिये ।

(४) रिक्शा-मालिकोंका भाड़ा चुकानेके बाद हरएक कुलीको एक घण्टा रिक्शा खींचनेके लिए जो सवा चार आने मेहनताना मिलता है, वह बहुत कम है। अगर वह दूसरे घण्टे रिक्शा खींचता है, तो उसे उस घण्टेके सिर्फ़ तीन पैसे मिलते हैं (सिंगल रिक्शा) ये दरें बढ़ाई जानी चाहिये यहाँ यह दलील पेश की जा सकती है कि रिक्शा कुलियोंकी दरें दूसरे धन्धोंकी दरोंसे कम नहीं हैं । यह सच है । लेकिन दूसरे धन्धे आदमीको दो या तीन सालमें ज़िन्दगीभरके लिए निकम्मा नहीं बना देते ।

(५) गरमीके मौसिममें जब पानीकी फ़.जूलखर्चीको रोकनेके लिए नलोंको बन्द करना ज़रूरी हो जाता है, तब म्युनिसिपैलिटीकी तरफ़से जगह-जगह पानीकी सबीलोंका इन्तज़ाम किया जाना चाहिये । लेकिन सच बात तो यह है कि अगर ठीक-ठीक बन्दोबस्त किया जाय और बारिशमें .खूब पानी इकट्ठा कर लिया जाय, तो मसूरीमें कभी पानीकी कमी महसूस ही न हो ।

(६) रिक्शा खड़ी रखनेकी जगहों पर आसरेका इन्तज़ाम किया जाना चाहिये और कुलियोंके मकान उनके पास ही होने चाहिये ।

(७) डॉक्टरी मददका ठीक-ठीक बन्दोबस्त किया जाना चाहिये ।

ऊपरकी बातें सिर्फ़ मिसालके तौर पर दी गई हैं । समझदार और उत्साही कार्यकर्त्ता विचार करके इस फेहरिस्तमें दूसरी कई बातें शामिल कर सकते हैं ।

('हरिजन'से) देवप्रकाश नय्यर

गुरुदेवके दिलका दर्द

आजकल हमारा मुल्क अकालके पंजेमें फँसा है । ऐसे वक़्तमें गुरुदेवकी एक कवितासे ली गई नीचे लिखी कड़ियाँ मौजूँ होंगी । ये अंग्रेज़ीमें लिखी गई हैं और गुरुदेवके हाथकी लिखावटवाला असल मज़मून सौभाग्य (.खुश-क़िस्मती)से श्री अमिय चक्रवर्तीके पास मौजूद है :

कालसे परेशान और घरबारसे महरूम वे,
मालिकको पुकारते हैं, हाथ ऊपर उठा करके;
जिस मुल्कमें मालिक जनम लेता है इनसानके दिलमें —
बहादुराना खिदमत और मुहब्बतकी शकलमें,
उस मुल्कमें पुकार यह कभी बेकार जा नहीं सकती ।

अपने दिलका दर्द जतानेके लिए गुरुदेवने जिनको ध्यानमें रखकर ये सतरें लिखी हैं, वे अंग्रेज़ीदाँ 'बहादुराना खिदमत और मुहब्बत'की इस पुकारको ठीकसे गुनेंगे क्या ? पूना, ३०–६–'४६

('हरिजन'से) अमृतकुँवर

विषय–सूची

			पृष्ठ
हिन्दी और उर्दूका अन्तर	...	गांधीजी	२१७
हफ़्तेवार खत	...	प्यारेलाल	२१७
सच्चा खतरा	...	गांधीजी	२२०
'कुछ खादी-भण्डारके बारेमें'	...	गांधीजी	२२१
नई वर्किंग कमेटीकी कामयाबी	...	गांधीजी	२२१
तीन शुद्ध बलिदान	...	प्यारेलाल	२२२
दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह पर कांग्रेसकी महासमितिका ठहराव	...		२२२
मसूरीका कलंक	...	देवप्रकाश नय्यर	२२३
टिप्पणी			
गुरुदेवके दिलका दर्द	...	अमृतकुँवर	२२४

www.vinoba.in